पहचान की राजनीति से बचे सरकार

जब सरकार लोगों के निजी और धार्मिक रूझानों में दखल देने लगती है, तो सामाजिक शांति और आजीविका प्रभावित होती हैं। कुछ समय से देश में ऐसा ही हो रहा है। पहले हिजाब पर हंगामा, फिर हलाल मीट को लेकर हुआ विवाद, और अब लाउडस्पीकर पर अजान के खिलाफ कार्रवाई। सांप्रदायिक घटनाओं की श्रृंखला ने एक ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी है, जहाँ धार्मिक जुलूसों ने भाजपा और विपक्ष शासित राज्यों, दोनों में सांप्रदायिक झड़पो को जन्म दे दिया है।

जब न्यायिक प्रक्रिया के बिना ही सरकारी बुलडोजर घरों और व्यवसायों को नष्ट करने लगते हैं, तो दो समुदायों के मिले-जुले क्षेत्रों में धार्मिक घृणा की आग को भड़कने में देर नहीं लगती है।

इस नफरत के पीछे सोशल मीडिया, पुलिस की विफलता और हिंदू-मुसलमानों की कुछ गतिविधियां उत्तरदायी हो सकती हैं। लेकिन मुख्य समस्या सरकार का पक्षपाती होना है। वर्तमान सरकारें भोजन, पोशाक तथा पूजा के तरीकों के सामाजिक धार्मिक और निजी मामलों में हस्तक्षेप कर रही हैं। सामान्यतः तो इससे संबंधित मामलों के विवाद को स्थानीय हितधारकों के बीच अदालतों पर या नागरिक समूहों और संस्थानों पर छोड़ दिया जाता है, लेकिन अब ऐसा नहीं हो रहा है। हरियाणा सरकार ने खुले में नमाज अदा करने वाले नमाजियों को हटाने का जिम्मा जबरन अपने ऊपर ले लिया। आदर्श रूप से मामले को बातचीत या न्याायिक प्रक्रिया के माध्यम से सुलझाया जाना चाहिए था, जिसमें सभी पक्षों को सुना जाता।

यदि सरकार ही पहचान की प्रायोजक बनने लगेगी, तो नए-नए झंडों और कुलदेवताओं के सरंक्षण की सूची बढती ही जाएगी। क्या सरकारें पहचान के बंटवारे की इस अंतहीन सूची का सरंक्षण कर सकेंगी ? यूपी का 'लव-जिहाद' कानून, व्यक्तिगत पसंद में राज्य की घुसपैठ का एक और उदाहरण है।

उत्तराखंड में मुख्यमंत्री ने निवासियों का सत्यापन कराने के निर्देश दिए हैं। यह संविधान 19 में बिना प्रतिबंध के पूरे भारत में स्वतंत्र रूप से आवागमन के मौलिक अधिकार को समाप्त कर सकता है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि हर पार्टी राज्य के उपकरणों के माध्यम से पक्षपातपूर्ण राजनीति करती है। बंगाल में टीएमसी पर भी इसी प्रकार के आरोप लगाए जा रहे हैं। हालांकि, भाजपा का धार्मिक पक्षपात कुछ अलग ही स्तर पर बढ़ चला है। कर्नाटक में बोम्मई सरकार, सबसे पहले धर्मांतरण विरोधी विधेयक लेकर आई थी। इसने ईसाई समुदाय को निशाना बनाया था।

इतना ही नहीं, हिंदू मंदिर मेलों में मुस्लिम विक्रेताओं के बहिष्कार और हलाल मीट के खिलाफ कदम उठाकर सरकार नागरिकों की आजीविका के अधिकार में गंभीर रूप से हस्तक्षेप कर रही है।

दरअसल, समुदायों के पहचान की राजनीति वोट बैंक की चाबी है। जब राजपूत करणी सेना ने 'पद्मावत' फिल्म पर आपत्ति की थी, तो सभी सरकारें असहाय सी होकर बस देख रही थीं। इसके पीछे कारण यही है कि वे अपना वोट बैंक नहीं खोना चाहती हैं।

समुदायों को संरक्षण देने में व्यक्तिगत अधिकारों की बलि चढ़ाई जा रही है। वैचारिक स्थिति के आधार पर खानपान, वेशभूषा, पूजा, शादी करने तथा फिल्म देखने के लिए नैतिक पुलिसिंग के माध्यम से सरकारी शक्ति का उपयोग लोगों की स्वतंत्रता को खतरे में डाल रहा है।

संवैधानिक लोकतंत्र का सिद्धांत यह है कि हम अपनी स्वतंत्रता का उपभोग इसलिए कर रहे हैं, क्योंकि दूसरे भी इसका उपभोग कर पा रहे हैं। इसमें किसी भी समूह को अपनी निजी पसंद या नापसंद को दूसरों पर थोपने के लिए सरकारी शक्ति का उपयोग करने में सक्षम नहीं होना चाहिए।

गांधी शाकाहार और ब्रह्यचर्य में पूर्ण विश्वास करते थे। लेकिन सत्ता या कानून के माध्यम से इन मूल्यों को दूसरों पर थोपने की कोशिश नहीं करते थे। अम्बेडकर बौद्ध बन गए थे, लेकिन उन्होंने बौद्ध धर्म के लिए सरकारी समर्थन नहीं मांगा था।

फिर भी उदीयमान हिंदू अधिकारों से रेखाओं को धुंधला किया जा रहा है। कुछ समूह सांप्रदायिक भावनाओं को भड़का रहे हैं। सरकारी संरक्षण की मांग कर रहे हैं, और अक्सर उसे प्राप्त भी कर रहे हैं।

धार्मिक और सांस्कृतिक मामलों में पक्ष लेने के बजाय, सरकार को निष्पक्ष रूप से कानून-व्यवस्था को बनाए रखने और व्यक्तिगत गरिमा का सम्मान करने पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

'द टाइम्स ऑफ इंडिया' में प्रकाशित सागरिका घोष के लेख पर आधारित। 21 अप्रैल, 2022